Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

भीष्मचरितम् में निहित दार्शनिक दृष्टिकोण: गीता के आलोक में

रामजीत यादव
शोधच्छात्र, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0 प्र0

Article Info
Volume 5, Issue 6
Page Number : 104-111
Publication Issue :
November-December-2022
Article History
Accepted : 01 Dec 2022
Published : 20 Dec 2022

शोधसारांश- भीष्मचरित में महाकवि डॉ0 दीक्षित ने दर्शन जैसे अत्यन्त गूढ़ तथा दुरूह विषय का भी यथावसर बहुत ही सरल-सहज तथा प्रभावोत्पादक शैली में वर्णन किया है, जिसके अध्ययन से दर्शन जैसे अतिगहन विषय का बोध सुगमता से हो जाता है। अस्तु भीष्मचरित के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि कवि का दर्शन विषयक ज्ञान अपरिमित था। प्रस्तुत महाकाव्य में गीता की भाँति निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति और संन्यास तथा आस्तिक और नास्तिक दर्शनों के मूलभूत धारणाओं का यथास्थान प्रतिपादन किया गया है, जिससे कवि की विद्वता के साथ-साथ यह भी परिचय मिलता है कि दीक्षित जी केवल मात्र कवि ही नहीं हैं, अपितु उच्चकोटि के दार्शनिक भी हैं। उन्हें समस्त दर्शनों का यथातथ्य तथ्यात्मक ज्ञान था। अत: प्रस्तुत काव्य में प्राय: सभी भारतीय दर्शनों के मतों का न्यूनाधिक उल्लेख मिलता है, जिनमें सर्वापेक्षया गीता का प्रभाव अधिक है।

मुख्य शब्द- भीष्मचरित, डॉ0 दीक्षित, निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति, संन्यास, आस्तिक, नास्तिक।

विश्व के परम तत्त्व का जिसके द्वारा साक्षात्कार किया जा सके उस विषय को भारतीय मनीषा में दर्शनशास्त्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है अर्थात् जिसमें जीवन और जगत् के विषय में गहन चिन्तन किया जाए तथा उनका सम्यक् रहस्योद्घाटन किया जाए, वह दर्शन कहलाता है। दुनिया के अनेकानेक दार्शनिकों ने इस मूलतत्त्व की व्याख्या भिन्न-भिन्न रीति से की है। दर्शन द्वारा जीवन के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। दर्शन के अनुशीलन द्वारा मनुष्य को यथार्थता का ज्ञान प्राप्त होता है यथा- ब्रह्म क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? मोक्ष क्या है? जीव एवं जगत् क्या है? आदि विषयों का अवबोध दर्शन द्वारा ही सम्भव होता है। दर्शन हमें व्यर्थ भटकाव से बचाते हुए हमारी सांसारिक वृत्तियों को परिवर्तित करते हुए जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष द्वार तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार संक्षेपत: यह कहा जा सकता है कि दर्शन द्वारा जीवन और जगत् से सम्बन्धित सभी विषयों का तात्त्विक विश्लेषण किया जाता है। अतएव मानव जीवन तथा दर्शन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

संस्कृत साहित्य की अक्षुण्ण सारस्वत श्रृंखला के उदीयमान नक्षत्र बहुमुखी प्रज्ञा प्रतिष्ठित डॉ0 हरिनारायण दीक्षित कृत भीष्मचरित का अधुनातन संस्कृत काव्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसका कथानक 20 सर्गों में निबद्ध है। इसकी उपजीविता का श्रेय महाभारत को है। महाकवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से जहाँ एक ओर ग्रन्थनायक के रूप भीष्म के चरितामृत पर विस्तृत प्रकाश डाला है, वहीं भारत के वर्तमान जनमानस की सामाजिक विकृतियों तथा राजनैतिक विसंगतियों को भी बड़ी सूक्ष्मता व मार्मिकता के साथ दर्शाने का प्रशस्यतर प्रयास किया है। जिस प्रकार भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने कर्त्तव्य पथ से विमुख हुए अर्जुन को जीवन के सर्वोत्तम मार्ग का सम्यक् दर्शन कराया है, उसी प्रकार डॉ0 दीक्षित ने भी अपनी कृति भीष्मचरित में भीष्म के व्याज से राजा युधिष्ठिर के प्रति राजधर्म, प्रजाधर्म तथा मोक्षधर्म का वह अनुपम उपदेश दिया है, जो राष्ट्र की सामान्य प्रजा एवं प्रजातन्त्र के कर्णधारों तथा शासकीय कर्मचारियों के लिए निश्चित ही एक महत् अवदान है।

डॉ0 दीक्षित स्वयं योग एवं सांख्य दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् रहे हैं। अतएव इनकी कृतियों में दार्शनिक चिन्तन होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति, संन्यास एवं मोक्ष आदि विषयों का शाश्वत उपदेश प्रदान कर उन्हें अपने कर्त्तव्यपथ-बोध का दर्शन कराया है, उसी प्रकार दीक्षित जी ने भी अपनी कृति भीष्मचरित में जीवन और जगत् सम्बन्धी विविध दार्शनिक विषयों का बड़ा ही रोचक व अनुपम उपदेश दिया है, जिसके अनुशीलन से जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भलीभाँति समझा जा सकता है। इनकी कृतियों के अध्ययन से बोध होता है कि वे वैदिक साहित्य के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र, राजनीति, युद्धकला, समाजशास्त्र, भूगोल, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि विषयों के मर्मज्ञ थे। यही कारण है कि उनके काव्यों में वर्ण्य-विषयों के सन्दर्भ के साथ-साथ यथावसर समस्त शास्त्रों के गम्भीर ज्ञान की अभिव्यञ्जना देखने को मिलती है।

भीष्मचरित महाकाव्य के कथानक का स्रोत ग्रन्थ महाभारत है और गीता महाभारत का ही एक महत्त्वपूर्ण भाग है। अतएव इस पर गीता के दार्शनिक उपदेशों का प्रभाव होना स्वाभाविक है, तदनुसार महाकाव्य में भीष्म के द्वारा देह और आत्मा के भौतिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि-

सार्धं च युष्माभिरयं ममात्मा, दुर्योधनेनास्ति समं शरीरम्।

तदन्नपुष्टं निपतेत्तदर्थे, येनाधमर्ण्यं क्षयमाप्नुयान्मे।।[1]

इस प्रसंग में भीष्म का पाण्डवों से स्पष्ट कथन है कि मेरा यह शरीर तो नश्वर है। अत: इसके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मेरा शरीर अब जरावस्था को प्राप्त हो गया है और फिर मैं भी इसे त्यागकर नवीन शरीर धारण करना चाहता हूँ। इस दृष्टि से भी यह तुम्हारे द्वारा जरा-सा भी शोक करने योग्य नहीं है। इसी क्रम में आगे युधिष्ठिर आदि को समझाते हुए भीष्म कहते हैं कि बेटा! बहुत दिनों से मृत्यु मेरी प्रतीक्षा में है। अतएव मृत्यु को प्राप्त होकर मैं उसी प्रकार प्रसन्न हो जाऊँगा जैसे मनुष्य की आत्मा पुराने कपड़े को त्यागकर नया वस्त्र धारण कर प्रसन्न हुआ करती है।

देहस्त्वनित्यो नहि शोचनीय:, तत्रापि वृद्धो नितरामशोच्य:।

विहाय चैनं नवमाप्तुमीहे, तद् वत्स! चिन्तां कुरु नैव चित्ते।।

प्रतीक्षते मां च चिरेण मृत्यु:, तात! प्रसन्नो भवितास्मि मृत्वा।

हित्वा पुराणं नवमाददानो, वस्त्रं यथा हृष्यति मानवात्मा।।[2]

आत्मा और देह के इस समकालगतिक संयोग के विषय में भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।[3]

इसी अनुक्रम में देह और आत्मा की नित्यता तथा अनित्यता के सम्बन्ध में विचार करते हुए कवि ने इसे काल के द्वारा नष्ट होने वाला कहा है। इस प्रसंग में पितामह भीष्म का युधिष्ठिर से कथन है कि हे राजन्! शरीर और आत्मा के इस संयोग–सम्बन्ध को काल के द्वारा अवश्य ही नष्ट हो जाने वाला समझिए। इसलिए इसके विनाश को देखकर धर्मात्मा, धीर और विद्वज्जन मोहग्रस्त नहीं होते हैं। अत: चिन्ता त्यागकर करने योग्य कार्य करो।

देहात्मनो: कालविनाशशीलं, संयोगसम्बन्धमवेहि राजन्!।

विपश्चितो धर्मधनाश्च धीरा:, मुह्यन्ति नैवास्य विलोक्य नाशम्।।

त्वं धर्मशीलोऽसि नयाश्रितश्च, धीरोऽसि विद्वाञ्जनताप्रियोऽसि।

श्रीकृष्णभीमार्जुनसेवितश्च, विहाय चिन्तां कुरु कर्म कार्यम्।।[4]

ग्रन्थकार द्वारा प्रकारान्तर से कही गई इन्हीं बातों (शरीर और आत्मा के भेद) को भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन समझाते हुए कहते हैं कि पण्डित अर्थात् आत्मज्ञ–जन मृत या जीवित किसी के लिए भी शोचनीय दशा को नहीं प्राप्त होते। इसलिए इस अविनाशी, अप्रमेय, नित्य देही अर्थात् जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गए हैं। अतएव हे भरतवंशी अर्जुन! तुम करने योग्य कर्म अर्थात् युद्ध को करो।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता:।।[5]

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता: शरीरिण:।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत!।।[6]

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय:।।[7]

इसी प्रकार महाकाव्य के बारहवें सर्ग में शरीर की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए इस विषय में राजा शान्तनु अपनी आसन्न मृत्यु को जानकर अपने प्रियपुत्र भीष्म को समझाते हुए कहते हैं कि बेटा! मेरी जिजीविषा निरन्तर कम होती जा रही है और अब मैं अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहूँगा, किन्तु पुत्र! तुम्हें मेरे लिए शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि विधाता किसी भी प्राणी के शरीर को स्थायी नहीं बनाते हैं और यह संसार स्थिर नहीं है। यहाँ जो आया है, उसका जाना सुनिश्चित है।[8]

प्रकृत महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि डॉ॰ दीक्षित शरीर तथा आत्मा के सम्बन्ध से भलीभाँति परिचित दिखलाई पड़ते हैं। यही कारण है कि महाकाव्य में इन्होंने भीष्म के मुख से युधिष्ठिर के प्रति बारम्बार कहलवाया है कि वे

उनकी मृत्यु पर शोक–क्षोभ नहीं प्रकट करेंगे। अपनी मृत्यु का समय निकट जानकर भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि बेटा! मेरे लिए तुम शोक नहीं करना। क्योंकि देहधारी आत्मा की देह का अवसान तो निश्चित ही है।

शोको विधेयो न च वत्स! मत्कृते, देहावसानं नियतं तु देहिनाम्।।[9]

यही कारण है कि महाकाव्य के सोलहवें सर्ग में भीष्म का श्रीकृष्ण से कथन है कि हे कृष्ण! अब मुझे न कोई दु:ख है, न तो कोई मोह है, न ही किसी प्रकार की दीनता है और न ही किसी प्रकार का अहंकार है। इस समय मेरे अन्त:करण में सत्त्वगुण की धारा की प्रधानता हो रही है। मेरा चित्त सुस्थिर हो गया है और बुद्धि भी तत्त्वोन्मुखी हो रही है।[10]

इसी प्रकार कवि द्वारा महाकाव्य में युधिष्ठिर–भीष्म मोक्षधर्म परिचर्चा के व्याज से आस्तिक और नास्तिक दर्शन पर समुचित प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर आस्तिक और नास्तिक प्रवृत्ति के लोगों की जीवनचर्या पर विचार व्यक्त करते हुए भीष्म कहते हैं कि इस संसार में केवल आस्तिक लोग ही नहीं रहते हैं, अपितु यहाँ नास्तिक लोग भी रहते हैं और उनके जीवन का उद्देश्य मोक्ष की साधना न होकर वरन् 'खाओ पियो मौज करो' होता है। ये लोग अपने जीवन में भौतिक सुखों को महत्त्व देते हुए मोक्ष को आकाश–कुसुम बतलाते हैं। ये लोग परलोक से नहीं डरते हैं और प्रकृतिवादी होते हैं तथा अर्थोपार्जन एवं कामसुख के लिए धर्म की उपेक्षा करते हैं। अतएव हमेशा ही अपने शरीर से अनुराग करने वाले ये लोग शरीर और आत्मा के विभेद को नहीं जानते हैं और सांसारिक दु:खों से पीड़ित होने पर भी ये लोग मुक्ति की कामना भी नहीं रखते हैं। इसलिए ऐसे लोगों को मोक्ष की साधना के विषय में उपदेश देना व्यर्थ ही जाता है।[11] विपरीत इसके आस्तिक लोगों की जीवनचर्या के विषय में महाकाव्य में भीष्म के माध्यम से कवि का अभिमत है कि पृथ्वी पर जो लोग आस्तिक भी हैं, उनमें से अधिकतर लोग सुखार्थी हैं। वे लोग सुख प्राप्त करने के लिए देवपूजा, तीर्थाटन आदि के द्वारा पुण्यार्जन करते रहते हैं। इहलोक और परलोक दोनों ही लोकों में अनुराग रखने वाले वे लोग नाना प्रकार के सुखों को प्राप्त करने के लिए तरह–तरह के यज्ञ, व्रत–उपवास करते हैं। देवताओं के ऐश्वर्य से प्रभावित हुए तथा सुख के प्रति आकृष्ट हुए चित्त वाले ये आस्तिकजन भी मोक्ष की आकांक्षा नहीं करते हैं। इन आस्तिकों में से कुछ लोग साधनहीन, अकर्मठ और ज्ञान–वैराग्य रहित होते हैं। फलस्वरूप पुण्यजनक कार्य न कर पाने के कारण उन्हें सुख की सामग्री उपलब्ध नहीं होती है और विवेकशून्य होने के कारण वे मोक्ष के अधिकारी नहीं होते हैं। सांसारिक सुखों की आराधना में लगे हुए ये लोग जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष को नहीं जानते हैं। अतएव सांसारिक सुख–दु:ख का अनुभव करते रहते हैं।[12]

इसी प्रसंग में कवि ने भीष्म के माध्यम से राजा युधिष्ठिर के प्रति मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों (साधकों) को उपदिष्ट करते हुए कहा है कि इस संसार में कुछ विरले लोग ही ऐसे साधक हैं जो उस दुर्लभ, दुष्प्राप्य मोक्षमार्ग को जानते हैं और उस दुर्गम मोक्षमार्ग पर चलने के लिए तो इन जानने वालों में से कुछ विरले व समझदार लोग ही मोक्ष की कामना करते हैं। वे विवेकशील लोग निश्चय ही परम सौभाग्यशाली होते हैं जो इस मोक्षमार्ग पर निरन्तर अग्रसर रहते हैं और त्याग रूपी अग्नि से अपने कर्मों की रुई के ढ़ेर को भस्म करके उस परम पद मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

ते सन्ति केचिद् विरला महीतले, जानन्ति ये मोक्षपदं दुरासदम्।

अमीषु केचिद् विरलाश्च धीधना:, वाञ्छन्ति तस्मिंश्चलितुं तु दुर्गमे।।

नूनं च ते धन्यमता विवेकिनो, निरन्तरं मोक्षपथे चलन्ति ये।

त्यागेन भस्मीकृतकर्मराशयः, तदक्षरं मोक्षपदं विशन्ति च ।।[13]

भारतीय ज्ञान परम्परा में अन्त:करण शुद्धि के लिए त्याग, तपस्या, आध्यात्म तथा सदाचार पर बल दिया गया है, जिसके विषय में कवि का स्पष्ट अभिमत है कि जो लोग मोक्षलोक के पथिक होते हैं, उन्हें त्याग के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ना चाहिए। क्योंकि त्याग निश्चय ही उनकी सहायता करता है और वही उन्हें मार्ग में भटकने से बचाता है। अत: मुमुक्षु को पुरुषार्थत्रय की पूर्ण अनुभूति करके वानप्रस्थी जीवनचर्या में प्रवृत्त होकर तपस्या के द्वारा मानसिक और कायिक शुद्धि करनी चाहिए।[14]

प्रस्तुत महाकाव्य में सांख्य तथा योग दर्शन पर भी आस्था प्रकट की गई है। डॉ0 दीक्षित जी कहते हैं कि मुमुक्षु व्यक्ति को अच्छे गुरु से सांख्य शास्त्र का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके धीरे-धीरे यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते रहना चाहिए ताकि मोक्ष का सफर सफलतापूर्वक पूरा किया जा सके। सांख्यशास्त्र के ज्ञान और योगशास्त्र की क्रियाओं के सतत अभ्यास से शरीर तो पवित्र होता ही है साथ ही साथ ऐसा करने से पंच-तन्मात्राओं और इन्द्रियों की क्रियाएँ भी निर्मल हो जाती हैं। तदुपरान्त मन और बुद्धि भी पावन हो जाती है। फलत: वह आत्मतत्त्व भी निश्चय ही प्रकाशित होने लगता है।[15] इस प्रकार जब साधक को अपने हृदय में आत्मतत्त्व प्रकशित होने लगे तो उसे मोक्ष प्राप्त्यर्थ दीक्षा लेकर समस्त सांसारिक भावों को त्यागते हुए अपने सम्पूर्ण मोक्ष हेतु पारिव्राजक बन जाना चाहिए।

प्रकाशमाने हृदि चात्मतेजसि, मोक्षाय दीक्षामुररीकरोतु सः।

संसारभावानखिलान् परित्यजन्, परिव्रजेत् पूर्णविमुक्तिहेतवे।।[16]

इसी प्रसंग में मोक्षलोक के अभिलाषी व्यक्ति को कैसा आचरण-व्यवहार करना चाहिए? इस विषय में गीता की भाँति भीष्मचरितकार का उपदेश कथन है कि मोक्ष की चाह रखने वाले व्यक्ति को सुख और दु:ख में समान रहना चाहिए। किसी के साथ रागद्वेष नहीं रखना चाहिए। सर्दी और गर्मी की चिन्ता किये बिना उसे उदारमना होकर धरती पर विचरण करते रहना चाहिए। उसे द्विज और शूद्र में तथा मनुष्य और पशु में समान भाव रखते हुए भूख और प्यास से विचलित नहीं होना चाहिए तथा एक स्थान पर वास नहीं करना चाहिए। उसे सोने और मिट्टी में समान दृष्टि रखनी चाहिए अर्थात् मन में किसी प्रकार की लिप्सा नहीं रखनी चाहिए। मित्र और शत्रु तथा मान-अपमान में समदर्शी एवं प्रतिक्रियाभाव रहित होना चाहिए।

सुखे च दु:खे च समानभावनो, न द्वेषरागौ विदधीत कुत्रचित्।

शीतोष्णदोषान् प्रति नापि चिन्तयन्, सर्वत्र देशे विचरेन्महाशयः।।

द्विजे च शूद्रे च पशौ च मानवे, समानभावेन समाचरेत्सदा।

क्षुधातृषाभ्यां न समाकुलो भवेत्, स्थाने च नैकत्र निवासमाचरेत्।।

स्वर्णे च लोष्टे च समानदर्शनो, मित्रे च शत्रौ च समो भवेत्सदा।

मानापमानौ च विभावयेत्समौ, प्रतिक्रियाभावविवर्जितो भवेत्।।[17]

मोक्षमार्ग के साधक को ममत्वरहित होकर किसी भी कार्य में अपने कर्तृत्त्व का अहंकार नहीं करना चाहिए। उसे शुभ और अशुभ में सदा एकरूपता रखनी चाहिए तथा सुख के साधनों के प्रति वीतराग अर्थात् तटस्थ रहना चाहिए। उसे सावधानी पूर्वक अपने शारीरिक शत्रुओं षड्–भावविकार पर विजय प्राप्त कर लेनी चाहिए और फिर कभी भी इनके वश में नहीं आना चाहिए।

ममत्वभावं न दधीत वस्तुषु, भवेदहङ्कारयुतो न कर्मसु।

शुभाशुभं चैकधियावलोकयेत्, वीतस्पृहः स्यात्सुखसाधनेषु च।।

कुर्यात्स्वषड्वर्गजयं जितेन्द्रियः, कदापि भूयो न च तद्वशो भवेत्।

दत्तावधानश्च भवेदिमं प्रति, जिता हि गूढं प्रहरन्त्यरातयः।।[18]

अन्त में डॉ दीक्षित भीष्म के माध्यम से युधिष्ठिर को मोक्ष के साधनों के विषय में ज्ञान देते हुए कहते हैं कि तृष्णा का विनाश, वैराग्य की भावना, त्याग की प्रवृत्ति, समदर्शिता, निष्काम कर्मयोग और तत्त्व का अनुचिन्तन– ये सभी मिलकर मोक्ष प्राप्ति में हेतु बनते हैं। अतएव मोक्ष का मार्ग अतीव कष्टदायक है, किन्तु मोक्ष स्वयं में निरन्तर सुख पहुँचाने वाला है। अतः प्रज्ञासम्पन्न साधक को मोक्षमार्ग में मिलने वाले कष्टों की उपेक्षा कर देनी चाहिए।[19]

उपरोक्त मोक्ष विषयक कथनों में कवि ने प्रत्यक्ष रूप से गीता के शास्वत उपदेशों का अनुसरण करने की बात कही है जैसा कि इस सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! धीर पुरुष को समस्त भोगों को अनित्य मानकर सर्दी और गर्मी की भाँति सुख–दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए अपने कर्मों में निरत रहना चाहिए। क्योंकि जो पुरुष सुख एवं दुःख में विचलित नहीं होता और इन अवस्थाओं में उसकी चित्तवृत्ति अड़िग अर्थात् समभाव रहती है, वह निश्चित ही मुक्ति के योग्य होता है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।[20]

अपने इस मत की पुष्टि में आगे गीताकार का कथन है– महापुरुषों को चाहिए कि वे सुख–दुःख, लाभ–हानि तथा जय–पराजय में समान दृष्टि रखें। इसलिए हे अर्जुन! युद्ध में जय अथवा पराजय की आसक्ति व चिन्ता से रहित होकर तथा सफलता और असफलता में समत्वबुद्धि वाला होकर अपना कर्म करो।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[21]

इस प्रकार भीष्मचरित में महाकवि डॉ0 दीक्षित ने दर्शन जैसे अत्यन्त गूढ़ तथा दुरूह विषय का भी यथावसर बहुत ही सरल–सहज तथा प्रभावोत्पादक शैली में वर्णन किया है, जिसके अध्ययन से दर्शन जैसे अतिगहन विषय का बोध सुगमता से हो जाता है। अस्तु भीष्मचरित के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि कवि का दर्शन विषयक ज्ञान अपरिमित था। प्रस्तुत महाकाव्य में गीता की भाँति निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति और संन्यास तथा आस्तिक और नास्तिक दर्शनों के मूलभूत धारणाओं का यथास्थान प्रतिपादन किया गया है, जिससे कवि की विद्वता के साथ–साथ यह भी परिचय मिलता है कि दीक्षित जी केवल मात्र कवि ही नहीं हैं, अपितु उच्चकोटि के दार्शनिक भी हैं। उन्हें समस्त दर्शनों का यथातथ्य तथ्यात्मक ज्ञान था। अत: प्रस्तुत काव्य में प्राय: सभी भारतीय दर्शनों के मतों का न्यूनाधिक उल्लेख मिलता है, जिनमें सर्वापेक्षया गीता का प्रभाव अधिक है।

कवि द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त सदुपदेशों को आज के अस्थिर समाज में अपनाने की महती आवश्यकता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र का कल्याण व उन्नति होगी। महाकाव्यगत इन शाश्वत–कालिक सिद्धान्तों को आत्मसात करके तथा जीवन के व्याहारिक धरातल पर चरितार्थ करते हुए कोई भी व्यक्ति जीवन के परम ध्येय मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ सूची–

1. भीष्मचरितम्, 14/13
2. भीष्मचरितम्, 14/23–24
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/22
4. भीष्मचरितम्, 14/25–26
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/11 पूर्वार्द्ध
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/18
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/37 पूर्वार्द्ध
8. भीष्मचरितम्, 12/6–10
9. भीष्मचरितम्, 19/49 उत्तरार्द्ध
10. भीष्मचरितम्, 16/34–35
11. भीष्मचरितम्, 19/5–8
12. भीष्मचरितम्, 19/9–10, 12–13
13. भीष्मचरितम्, 19/15, 17
14. भीष्मचरितम्, 19/24–25
15. भीष्मचरितम्, 19/26–27
16. भीष्मचरितम्, 19/28

17. भीष्मचरितम्, 19/29–31
18. भीष्मचरितम्, 19/32–33
19. भीष्मचरितम्, 19/38–39
20. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/14–15
21. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/38, 48